Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

उपनिषद् साहित्य में सृष्टि विवेचन एक अध्ययन

डॉ० हरिओम

शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

रामसिंह

शोध छात्र, संस्कृत विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शोध सारांश :

उपनिषदों का भारतीय दर्शन में सृष्टि–विवेचन का अपना अनूठा स्थान है। ये केवल जगत की उत्पत्ति जानने का प्रश्न ही नहीं है वास्तव में, यह उस अंतिम सत्य की खोज है, जिससे हम पूरे विश्व की रचना, व्यवस्था और उसके अस्तित्व को समझ सकते हैं। जब व्यक्ति अपने आसपास फैली दुनिया को देखता है, तो अक्सर सोच में पड़ जाता है : कैसे हुआ, इसकी जड़ क्या है, और जो ये हर समय बदलता है, क्या इसके पीछे कोई स्थायी तत्त्व भी है या इसे सिर्फ संयोग मान लें?

उपनिषद् इन सवालों के जवाब पौराणिक कहानियों या अंध–आस्थाओं के सहारे नहीं देते। वे गहरे, तर्कपूर्ण मनन से इन प्रश्नों को सुलझाते हैं। इसी वजह से, उपनिषदों में सृष्टि–विवेचन केवल ब्रह्मांड की शुरुआत का विवरण नहीं है। यह हमारे अस्तित्व में छुपे रहस्य का पता लगाने का मार्ग भी है।

इन ग्रंथों की नजर में सृष्टि का मूलाधार ब्रह्म है। ब्रह्म वही परम तत्व है, जिससे जगत का जन्म होता है, जिसमें ये टिकता है और जिसमें अंत में समा जाता है। यह ऐसा नहीं है कि कोई बाहरी निर्माणकर्त्ता ब्रह्म की तरह सब कुछ बना रहा है, अपितु ब्रह्म ही कारण भी है और उसी का विस्तार भी। सृष्टि और ब्रह्म के बीच जीवंत, गहरा रिश्ता है।

उपनिषदों में कई रूपकों और संकेतों से सृष्टि को समझाया गया है। कहीं यह ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, कहीं पर परम सत्य की शक्ति है और कहीं संसार नाम–रूप की विविधता के रूप में दिखता है। दृश्य जगत चाहे जितने अलग–अलग रूपों में फैला हो, उसकी जड़ बस एक ही तत्व है। उपनिषदों की महत्ता यही है : वे बाहरी विविधता को मानते हैं, पर उसके नीचे एक परम आधार को खोजते हैं। सृष्टि–विवेचन हमें यही सिखाता है कि बाहरी भिन्नताओं में उलझे रहना आवश्यक नहीं, वास्तविक खोज तो उनके पीछे छुपे मूल तत्व की है।

उपनिषदों का मानना है, सृष्टि के पीछे एक चेतन, व्यापक और परम सत्ता है। इसलिये सिर्फ बाहरी अध्ययन पर्याप्त नहीं; अपितु दर्शन और आध्यात्मिक नजर भी जरूरी है। सृष्टि–विवेचन दरअसल बाह्य विश्व और अंदर की चेतना के बीच सेतु का कार्य करती है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

इंसान तब अपने को अलग–थलग नहीं समझता; उसे अहसास होता है कि वो इस बड़ी व्यवस्था का भाग है। इसके चलते उसके अन्दर जिम्मेदारी, विनम्रता और समन्वय की भावना आती है और वो प्रकृति, समाज, जीवों के प्रति ज्यादा संवेदनशील बन जाता है। ऐसे में, सृष्टि–विचार न सिर्फ तर्क या ज्ञान की भूख मिटाता है, अपितु जीवन की दृष्टि को पूरी तरह बदल देता है।

Keyword: सृष्टि–विवेचन, ब्रह्म, उपादान कारण, चेतन सत्ता, नाम–रूप, कारण–कार्य संबंध, सत्, आत्मा, अस्तित्वबोध, जीवन–दर्शन।

उपनिषदों में सृष्टि की अवधारणा

उपनिषदों में सृष्टि की चर्चा सिर्फ ''संसार कब और कैसे बना'' जैसी प्राथमिक विचार तक सीमित नहीं रहती। वास्तविक सवाल यहाँ यह है कि–दृश्य जगत का अंतिम आधार क्या है? वैदिक युग के आरंभिक विचारों में सृष्टि को लेकर कई रूपक मिलते हैं, लेकिन उपनिषद् उस विविधता को गूढ़ दार्शनिक स्तर पर ले जाते हैं। यहाँ सृष्टि–विचार किसी देवकथा का विस्तार नहीं है; वास्तव में, यह उस मूल तत्त्व की खोज है, जिससे विश्व उत्पन्न होता है, जिसमें टिकता है और अंत में उसी में लीन हो जाता है। यही वजह है कि उपनिषदों का सृष्टि–विवेचन वर्णनात्मक नहीं, अपितु तात्त्विक है।

ह्यूम ने अपने उपनिषद्–परिचय में दिखाया है कि शुरुआती उपनिषद् पूर्ववर्ती कल्पनाओं (आकाश, असत्, जल, प्रजापति आदि) को अपनाकर धीरे–धीरे ऐसी समग्र दार्शनिक दृष्टि तक पहुँचते हैं जहाँ विश्व की पूरी विविधता के पीछे अनिवार्य एकता स्वीकार की जाती है (ह्यूम, 1921, पृ. 33–35)। इसी बदलाव ने उपनिषदों को केवल धार्मिक ग्रंथ ही नहीं रहने दिया, अपितु दार्शनिक ग्रंथ बन गए। उपनिषदों में सृष्टि पर विचार का सबसे पहला और अहम पक्ष है कि वे दृश्य जगत को अंतिम सत्य नहीं मानते।

सृष्टि जैसी चर्चा इस तरह अस्तित्व–विज्ञान का Central question बन जाती है। शंकरोत्तर अद्वैत ने इसे और अधिक सूत्रबद्ध किया, लेकिन इसकी जड़ें उपनिषदों में ही हैं। शर्मा के अनुसार उपनिषद ब्रह्म को परम सत्य के रूप में समझते हैं, जो खुद को जगत् और जीव के रूप में व्यक्त करता है। यहाँ सृष्टि निर्जीव पदार्थों के यांत्रिक संयोजन की बात नहीं है; यह परम वास्तविकता की अभिव्यक्ति है (शर्मा, 1960, पृ. 22–23)।

उपनिषद् सृष्टि को सिर्फ भौतिक घटना नहीं मानते। जगत् की उत्पत्ति की चर्चा चेतना से जुड़ी है। जगत् के मूल में कोई चेतन या अचेतन वस्तु नहीं, अपितु ऐसी सत्ता है जो दोनों का आधार है। इस तरह उपनिषदों का सृष्टि–चिंतन पदार्थवाद की सीमा को पार कर जाता है। जगत केवल वस्तुओं का समूह नहीं, बल्कि अर्थ–संपन्न विश्व बनता है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

उपनिषद् सृष्टि को बहुलता के अंदर छिपी एकता के रूप में पढ़ते हैं। आम विचार के लिए संसार अनेकता, भिन्नता और परिवर्तन का क्षेत्र है। उपनिषद् इसे अस्वीकार नहीं करते, लेकिन वे मान लेते हैं कि इस विविधता के पीछे कोई अंतिम एकता छुपी है। विविध नाम–रूपों के पीछे एक ही तत्त्व सक्रिय है। ये विचार मनुष्य को भेद–भाव में उलझने से बचाते हैं; उसे संबंधबद्ध, गहरे जगत् की झलक दिखाते हैं। यही कारण है कि उपनिषदों में सृष्टि–विवेचन सीधा जीवन–दर्शन से जुड़ जाता है।

उपनिषद् आलोचनात्मक हैं। वे किसी एकरूप, वैज्ञानिक सृष्टि–सिद्धांत को नहीं मानते। कहीं जगत जल से, कहीं आकाश से, कहीं आत्मा से, कहीं सत् से, कहीं ब्रह्म से जुड़े दिखते हैं। इसलिए उपनिषदों के सृष्टि–विवेचन को वैज्ञानिक मॉडल नहीं, अपितु दार्शनिक–आध्यात्मिक संकेत–प्रणाली की तरह पढ़ना चाहिए।

ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति

उपनिषदों की मूल धारणा यही है– जगत् का मूल ब्रह्म है। ब्रह्म कोई दूर बैठा हुआ शिल्पकार नहीं, जो पहले से मौजूद पदार्थ को लेकर सृष्टि की रचना कर देगा। वह स्वयं ही वह परम आधार है, जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है। इसीलिए उपनिषदों में ब्रह्म को केवल निमित्त कारण नहीं माना, अपितु उपादान कारण भी समझा गया है। शर्मा ने साफ तौर पर लिखा है कि ब्रह्म वही परम सत्य है, जो प्रकृति और आत्मा के रूप में स्वयं अपना विस्तार करता है– इस विश्व का अंतिम कारण है। (शर्मा, 1960, पृ. 22)। इससे ब्रह्म और सृष्टि के बीच गहरा, जीवित संबंध बनता है।

छांदोग्य उपनिषद् इस विचार को बड़ी प्रभावशाली भाषा में सामने रखता है। वहाँ कहा गया है, शुरू में यह जगत केवल सत् थाकृएकमेव, अद्वितीय। उसने इच्छा की, "मैं अनेक होऊँ," और वहीं से बहुलता की शुरुआत हुई। ओलिवेल के संस्करण में एक प्रसिद्ध उपमा मिलती हैकृमिट्टी को जान लेने से मिट्टी से बनी हर चीज़ का ज्ञान हो जाता है; इसी तरह मूल तत्व को जानना, सब रूपों का द्वार खोल देता है। रूपों का बदलना नाम भर है, वास्तविक सत्य तो मूल द्रव्य है (ओलिवेल, 1998, पृ. 270)। यही सोच, सृष्टि के उपनिषदिक अर्थ को खोलती हैकृसंसार ब्रह्म से अलग कोई दूसरी सत्ता नहीं, अपितु उसी की बहुविध अभिव्यक्ति है।

ऐतरेयोपनिषद् में यही सत्य दूसरे तरीके से आता है। पहले केवल आत्मा थी, जिसने सोचा"– मैं लोकों की सृष्टि करूँ।" इसके बाद उसने विभिन्न लोक, शक्तियाँ और प्राणी रच दिए (ह्यूम, 1921, पृ. 316)। यहाँ आत्मा और ब्रह्म का फर्क गौण हो जाता है–मूल बात, सृष्टि की जड़ में चेतन सत्ता है। यह दृष्टि बहुत अहम है, क्योंकि उपनिषद् सृष्टि को अंधे पदार्थ की दुर्घटना नहीं मानते। जगत् में व्यवस्था और चेतना इसलिए है, क्योंकि आधार खुद चेतन है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्म–परिभाषा सृष्टि की बात को और दार्शनिक बना देती है। वहाँ ब्रह्म को उस सत्ता के रूप में देखा गया है, "जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं, जीते हैं, और अंत में जिसमें लौट जाते हैं।" ओलिवेल के अनुवाद में यह सूत्र विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय–तीनों को एक ही आधार से जोड़ता है (ओलिवेल, 1998, पृ. 332)। यहाँ सृष्टि कोई एक बार की घटना नहीं, अपितु सतत् निर्भरता है– जगत् हर क्षण ब्रह्म पर टिका है। वही कारण, पोषक और अंतिम आश्रय है।

मुण्डकोपनिषद् इस विचार को रूपकों से जिंदा बना देता है। वह कहता है, जैसे मकड़ी अपने से जाले को निकालती और समेट लेती है, जैसे पृथ्वी से वनस्पतियाँ उगती हैं, जैसे जीवित इंसान से केश आता है, वैसा ही अविनाशी से यह जगत् प्रकट होता है (ओलिवेल, 1998, पृ. 460)।

यह रूपक बहुत गहरा है। इससे स्पष्ट होता है– सृष्टि ब्रह्म से बाहर निकलकर कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं बन जाती, उसका स्रोत और नियंत्रण उसी में निहित है। मकड़ी और जाले का संबंध केवल उत्पादन का नहीं, निर्भरता का भी है; सृष्टि उसी तरह ब्रह्म–आश्रित है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में यही सृष्टि–विचार ज्यादा ईश्वरवादी स्वर ले लेता है। यहाँ विश्व–व्यापक प्रभु को वह सत्ता माना गया है, जिसके आदेश से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के रूप में सृष्टि प्रकट होती है, और जो सृष्टि के संकोच व विस्तार दोनों को आधार देता है (ओलिवेल, 1998, पृ. 454)। यहाँ ब्रह्म का विश्व–स्रोतत्व सिर्फ तत्त्वमीमांसा नहीं रह जाता, वह धार्मिक अनुभूति से जुड़ जाता है।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उपनिषदों में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना कई रूपों में व्यक्त हुई है सत्, आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, अविनाशी। फिर भी उनकी दिशा एक ही हैरू जगत की जड़ में एक अंतिम, व्यापक, चेतन सत्य है। कुल मिलाकर, उपनिषदों में सृष्टि का विचार निर्जीव बाह्यता नहीं है, आत्मीय उद्भव है। जगत ब्रह्म से उत्पन्न है और इसलिए उसमें मूलतः आध्यात्मिक अर्थ छुपा है। यही कारण है कि उपनिषद् सृष्टि–प्रश्न को ब्रह्म–प्रश्न से अलग नहीं करते–सृष्टि की खोज आखिरकार ब्रह्म की खोज है।

सृष्टि, जगत् और कारण–कार्य संबंध

उपनिषदों में सृष्टि–विवेचन का एक अति सूक्ष्म पहलू है–कारण और कार्य का रिश्ता। प्रश्न यही उठता है कि– अगर जगत् ब्रह्म से निकला है, तो क्या वो ब्रह्म से अलग, अपनी कोई स्वतंत्र पहचान रखता है? या फिर कार्य और कारण का संबंध इतना गहरा है कि दोनों को अलग किया ही नहीं जा सकता? उपनिषद् इस दूसरी सोच को ज्यादा ध्यान देते हैं। उनके अनुसार कार्य को पूरी तरह कारण से अलग समझना गलत है। छांदोग्योपनिषद् में जो उदाहरण दिए गए–मिट्टी और उससे बनी वस्तुएँ, ताम्र और ताम्राभूषण, लोहे और उससे बनी

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

वस्तुएँ–ये सब बताते हैं कि असली बदलाव बस नाम–रूप का है, मूल सच्चाई उसी कारण में रहती है।

अगर आप ओलिवेल के अनुवाद को पढ़ें, वहाँ स्पष्ट लिखा है–"परिवर्तन केवल भाषिक व्यवहार है, वास्तविकता मूल द्रव्य ही है।" तात्पर्य यह है कि, उपनिषदों के अनुसार कार्य कारण का त्याग नहीं करता, वो बस उसी का एक नया रूप बन जाता है। यही बात नाम–रूप के विचार में आगे बढ़ती है। जब उपनिषद् कहते हैं कि ब्रह्म ने दुनिया को नाम और रूप दिए, उनका तात्पर्य ये नहीं कि ब्रह्म के अलावा कोई दूसरी स्वतंत्र चीज़ पैदा हो गई। नाम–रूप तो अलग–अलग पहचान और अनुभव की सुविधा देते हैं, लेकिन इस विविधता का अर्थ ये नहीं कि वे असल में स्वतंत्र हैं। इसी वजह से उपनिषद् न तो जगत को बिलकुल शून्य मानते हैं, न उसे परम सत्य के बराबर स्वतंत्र सत्ता मानते हैं।

जगत् की स्थिति आश्रित यथार्थ की है–वो है, लेकिन अपने कारण यानी ब्रह्म पर आधारित। इसी वजह से बाद के वेदान्त में कारण–कार्य, परिनाम, विवर्त, उपादान और निमित्त जैसे सवाल इतने अहम हो गए। ह्यूम ने भी शुरुआती उपनिषदों में यही रुझान देखाकृवे जगत के पीछे वह आधार खोजते हैं जो सारी चीज़ों के पार जाकर उनकी एकता बताता है। मगर उपनिषद केवल इस अमूर्त एकता पर नहीं रुकते। बृहदारण्यक में सृष्टि के पुराने रूपक, जैसे शुरुआत में मृत्यु या भूख का होना और फिर उससे धीरे–धीरे सृष्टि रचना, ये दर्शाते हैं कि जीवन में गतिशीलता, इच्छा, अभाव और विस्तार भी हैं। इस दृष्टि से कारण–कार्य का रिश्ता सिर्फ स्थिर तत्त्वमीमांसा नहीं–यह एक सृजनात्मक प्रक्रिया भी है।

शर्मा इस संबंध को इस तरह समझाते हैंकृउपनिषदों में कार्य, कारण से अलग बाहरी चीज़ नहीं है; जीव और जगत दोनों उसी परम सत्य की अभिव्यत्ति हैं। यही कारण है कि श्वेतकेतु के आत्मा और ब्रह्म का ऐक्य संभव हो पाता है। अगर कारण और कार्य में कोई जीवंत आंतरिक संबंध न हो, तो "तत्त्वमसि" जैसे वक्तव्य का कोई अर्थ ही नहीं बचता। उपनिषद् बताते हैं कि व्यक्तिगत आत्मा और विश्वात्मा दोनों उसी मूल सत्य की अलग–अलग छाया हैं।

यहाँ कारण–कार्य का रिश्ता सिर्फ भौतिक नहीं, अस्तित्व का है। इस बात को लेकर थोड़ा सतर्क रहना जरूरी है– उपनिषदों में कारण–कार्य के जो अर्थ हैं, वे आधुनिक विज्ञान के कारणवाद से काफी अलग हैं। विज्ञान में कारण–कार्य घटनाओं के क्रम, नियम और अनुभवजन्य परीक्षण से जुड़ा है। पर उपनिषदों का प्रश्न ज्यादा बुनियादी है–किसी भी वस्तु के होने का वास्तविक आधार क्या है? इसीलिए वहाँ कारण–कार्य की चर्चा तत्त्वमीमांसीय और आध्यात्मिक बन जाती है। जब वे ब्रह्म को कारण कहते हैं, तो मतलब बस समय–क्रम में पहले होना नहीं, अपितु अस्तित्व के आदर से सबसे गहरा, सबसे मूल होना है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

यह समझ जीवन–दर्शन में भी खास जगह रखती है। अगर कार्य कारण से पूरी तरह अलग नहीं, तो व्यक्ति भी अंतिम सत्य से कटा हुआ नहीं है। जगत् की कोई चीज़ बिलकुल पराई नहीं रह जाती। इससे अलगाव की भावना कम होती है और संबंध की समझ बढ़ती है। दूसरी ओर, ये सोच विविधता को नष्ट नहीं करती; नाम–रूप की दुनिया तो रहती है, बस उसका अभिमान टूट जाता है। इस प्रकार, उपनिषदों का कारण–कार्य विवेचन न केवल दार्शनिक उलझन सुलझाता है, अपितु जीवन अनुभव को एक गहरे संतुलन तक ले जाता है–एकता और विविधता, आधार और अभिव्यक्ति, कारण और कार्य के इस संतुलन तक।

सृष्टि–विचार और मानव जीवन

सृष्टि–विवेचन तब ही पूरी तरह समझ में आता है, जब उसे मानव जीवन से जोड़ा जाए। अगर सृष्टि का सवाल केवल जगत् के जन्म की बौद्धिक जिज्ञासा बनकर रह जाए, तो उसका असर सीमित ही रहेगा, किन्तु उपनिषदों में सृष्टि–विचार केवल ब्रह्मांड के रहस्य तक सीमित नहीं है–यह मनुष्य की आत्म–समझ, उसका नैतिक बोध, प्रकृति से उसका संबंध और उसके आध्यात्मिक जीवन को भी गहराई से छूता है।

जब उपनिषद् कहते हैं कि पूरे जगत का आधार एक है, वे वास्तव मे ये भी सिखाते हैं कि इंसान स्वयं को इस व्यापक व्यवस्था से अलग–थलग न माने। वह इस सृष्टि का स्वामी नहीं, अपितु सहभागी है। ह्यूम ने उपनिषदों के दार्शनिक विकास का वर्णन करते हुए एक अहम बात कहीकृउन्होंने लिखा कि विश्व का आधार ढूंढना अंत में आत्मा की खोज बन जाता है; बाहरी दुनिया की गुत्थियाँ इंसान के अपने अस्तित्व से अलग नहीं रहतीं (ह्यूम, 1921, पृ. 40, 65)। इस दृष्टिकोण से सृष्टि–विचार कोई बाहरी ब्रह्मांड–विज्ञान नहीं है, अपितु आत्म–सापेक्ष दर्शन है। अगर जगत् ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, तो मनुष्य का जीवन भी उसी अभिव्यक्ति का एक रूप है। इससे जीवन में आदर, विनम्रता और उत्तरदायित्व की भावना पैदा होती है।

मानव जीवन के लिए इसका पहला अर्थ तो यही है कि प्रकृति सिर्फ इस्तेमाल की चीज नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश–ये सब सृष्टि के तत्त्व हैं, और उपनिषद् इन्हें ब्रह्म से जुड़े हुए मानते हैं। इस नजरिए में प्रकृति का अपमान उस व्यापक सत्य की अवज्ञा बन जाता है, जिसके भीतर मनुष्य स्वयं स्थित है।

आज के पर्यावरणीय संकट की पृष्ठभूमि में यह उपनिषदिक बोध बहुत प्रासंगिक हो उठता है। यद्यपि संसार को सिर्फ संसाधन की तरह देखने के बदले उसे एक आध्यात्मिक परितंत्र की तरह देखा जाए, तो मनुष्य का व्यवहार ज्यादा संयमित और सहअस्तित्वपरक हो सकता है। दूसरा अर्थ यह हैं कि सृष्टि–विचार व्यक्ति को उसके अहंकार से मुक्ति देता है। अगर पूरा जगत् एक ही अंतिम आधार पर टिका है, तब 'मैं' न कोई पूर्ण, न स्वतंत्र, न स्वायत्त

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सत्ता है; वह एक व्यापक वास्तविकता के अंदर अपनी जगह रखता है। यह समझ जीवन को संतुलन देती है—इंसान अपनी सफलताओं का जरूरत से ज्यादा अभिमान नहीं करता, और अपनी कमियों से टूटता भी नहीं। वह खुद को बड़े अस्तित्व—क्रम का एक अंश मानना सीखता है, जिसका असर उसके मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में विनम्रता ला सकता है।

तीसरा निहितार्थ नैतिक है। यद्यपि जगत् के सभी प्राणी और तत्त्व एक ही मूल सत्ता से जुड़े हैं, तब दूसरों के साथ संबंध का स्वर भी बदल जाता है। करुणा, अहिंसा, संयम, समभाव—ये मूल्य सिर्फ सामाजिक अनुशासन नहीं रहते; वे सृष्टि की अंतरंग एकता की स्वाभाविक नैतिक परिणति बन जाते हैं। शर्मा के विवेचन में भी यही बात उभरती है कि उपनिषदिक दृष्टि विषय और वस्तु, आत्म और अनात्म के द्वैत को अंततः व्यापक एकता में समेटती है (शर्मा, 1960, पृ. 23—24, 26)।

ऐसी स्थिति में नैतिकता बाहरी आदेश नहीं, अस्तित्वबोध का परिणाम बन जाती है। चौथा अर्थ आध्यात्मिक है। सृष्टि को ब्रह्म की अभिव्यक्ति के रूप में देखने से मनुष्य का जगत् से संबंध न तो केवल मोहपूर्ण रह जाता है, न निषेधात्मक। वह न तो संसार से चिपकता है, न उसे छोड़ भागता है। वह उसे अर्थपूर्ण, मगर आश्रित सत्य के रूप में देखता है। ऐसे में जीवन में एक दृष्टिकोण का आकार लेता है, जिसमें उपभोग की जगह सहभागिता, स्वामित्व की जगह संरक्षक—भाव, और भ्रम की जगह जागरूकता आती है। यही उपनिषदिक जीवन—दर्शन की असली शक्ति है।

जोड़ें तो, सृष्टि—विचार केवल 'जगत् क्या है'? के सवाल का उत्तर नहीं देता, अपितु, 'मैं कौन हूँ'?, 'प्रकृति से मेरा संबंध क्या है'?, और 'मुझे कैसे जीना चाहिए'? जैसे सवालों को भी नई दिशा देता है। यही कारण है कि सृष्टि—विवेचन मानव—केन्द्रित नहीं, अपितु जीवन—केन्द्रित दर्शन बनाता है।

जीवन—दर्शन की दृष्टि से सृष्टि—विवेचन का महत्त्व

जीवन—दर्शन के नजरिए से सृष्टि—विवेचन सचमुच अहम है, क्योंकि यह मनुष्य को जगत के साथ एक गहरे अर्थ संबंध में रखता है। अगर संसार बस अनियमित पदार्थों का संयोग होता, तो जीवन का मतलब भी केवल क्षणिक सुख, संघर्ष और उपभोग तक ही सीमित रहता। लेकिन उपनिषद कहते हैं—जगत् एक परम आधार से जुड़ा है। यहीं से जीवन का दार्शनिक क्षितिज फैलता है। इंसान खुद को सिर्फ एक दुर्घटनावश बने जीव के तौर पर नहीं देखता, अपितु वह अपने अस्तित्व को उस विश्व—संबंध का हिस्सा मानता है, जिसकी जड़ें किसी अंतिम सत्य में हैं।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

यही सृष्टि–विवेचन जीवन–दर्शन के लिए फायदेमंद है, क्योंकि यह जगत और आत्मा के बीच सेतु बनाता है। अगर ब्रह्म से जगत पैदा होता है, और वही ब्रह्म आत्मा का आधार है, तो बाहर और भीतर, विश्व और व्यक्ति, पदार्थ और चेतना–इन सबमें एक जीवित अंतर्संबंध बन जाता है। इसी से उपनिषदिक जीवन–दृष्टि की नींव पड़ती है। इंसान अपने भीतर और बाहर दोनों जगह उसी अंतिम सत्य की छाया महसूस कर सकता है। इस तरह सृष्टि–विवेचन आत्मबोध की यात्रा को बाह्य जगत् से अलग नहीं करता, अपितु उससे जोड़ता है। मुण्डकोपनिषद् में मकड़ी–जाले वाला रूपक और श्वेताश्वतरोपनिषद् का विश्व–विस्तार संबंधी कथन–ये दोनों सृष्टि को निर्भर, अर्थपूर्ण और पुनरावर्तनीय प्रक्रिया के रूप में दर्शाते हैं (ओलिवेल, 1998, पृ. 454, 460)।

ऐसी दृष्टि इंसान को दो अतियों से बचाती है–पहली है जगत् को अंतिम और स्वयंसिद्ध मान लेना, दूसरी है जगत् को पूरी तरह नकार देना। उपनिषद् इन दोनों के बीच संतुलन रखते हैं। जगत् न तो परम है, न निरर्थक–वह ब्रह्म–आश्रित सत्य है। जीवन–दर्शन में यह संतुलन जरूरी है, क्योंकि इससे मनुष्य संसार में होते हुए भी मोह में नहीं फँसता। शर्मा के मुताबिक उपनिषदों में ब्रह्म की निरूपण परम्परा आखिरकार इस बोध तक पहुँचती है कि सारी भिन्नताएँ किसी व्यापक वास्तविकता में छुपी हैं; नाम–रूप का संसार आभासी नहीं है, अपितु आश्रित रूप में सत्य है (शर्मा, 1960, पृ. 27–28)। इसका व्यावहारिक मतलब यह है–जीवन का लक्ष्य सिर्फ बाह्य सफलता नहीं हो सकती। अगर जगत् का मूल आध्यात्मिक है, तो जीवन की दिशा भी अंततः आंतरिक परिपक्वता, विवेक, समत्व और आत्म–जागरण की ओर रहेगी। सृष्टि–विवेचन की वजह से मूल्य–दर्शन भी प्रभावित होता है। ह्यूम ने उपनिषदों की विचार–यात्रा में देखा–विश्व–आधार की खोज आदमी को आखिरकार अपने ही आत्मतत्त्व तक पहुँचा देती है (ह्यूम, 1921, पृ. 34–35, 65)।

यही जीवन–दर्शन का सबसे बड़ा महत्त्व है। सृष्टि का सवाल बस दूरस्थ ब्रह्मांड का नहीं रह जाता; वह आदमी के खुद के होने के सवाल में बदल जाता है। मैं कहाँ से आया हूँ? मेरा जगत् से क्या संबंध है? क्या मैं इस विशाल व्यवस्था में अकेला हूँ या किसी गहरे सत्य से जुड़ा हूँ? उपनिषद् साफ जवाब देते हैं–आदमी अलग–थलग नहीं, बल्कि उसी सत्य का एक बिंदु है जिससे पूरी सृष्टि जुड़ी है। इसी पहचान में जीवन की शांति मिलती है। जब आदमी जगत को प्रतिद्वंद्विता का क्षेत्र मानता है, उसके भीतर डर और असुरक्षा बढ़ती है, लेकिन जब वह जगत् को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानता है, तो विश्वास और सौहार्द बढ़ता है। यह दृष्टि उसे जिम्मेदार बनाती है, क्योंकि तब उसका संसार के प्रति व्यवहार भी आत्म–विस्तार का व्यवहार बन जाता है। सृष्टि–विवेचन सिर्फ ब्रह्मांड की उत्पत्ति का सिद्धान्त नहीं है; यह जीवन की नैतिक और आध्यात्मिक संरचना की भी बुनियाद है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

अंत में, जीवन–दर्शन की दृष्टि से सृष्टि–विवेचन उपनिषदों की बड़ी रचनात्मक देन है। यह इंसान को जगत् का अर्थ समझने में, अपने जीवन की स्थिति पहचानने में, प्रकृति से नया संबंध बनाने में, और आध्यात्मिक परिपक्वता की ओर बढ़ने में मदद करता है। इसी वजह से सृष्टि–विचार उपनिषदों में महज ब्रह्मांड–कल्पना नहीं, अपितु एक व्यापक दार्शनिक जीवन–दृष्टि का आधार बन गया है।

संदर्भ–सूची

प्राथमिक स्रोत

1. ऐतरेयोपनिषद्, ह्यूम, रॉबर्ट अर्नेस्ट, 1921, दि थर्टीन प्रिन्सिपल उपनिषद्स, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
2. बृहदारण्यकोपनिषद, ह्यूम, रॉबर्ट अर्नेस्ट, 1921, दि थर्टीन प्रिन्सिपल उपनिषद्स, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
3. छांदोग्योपनिषद्, ह्यूम, रॉबर्ट अर्नेस्ट, 1921, दि थर्टीन प्रिन्सिपल उपनिषद्स, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, ह्यूम, रॉबर्ट अर्नेस्ट, 1921, दि थर्टीन प्रिन्सिपल उपनिषद्स, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
5. मुण्डकोपनिषद्, ह्यूम, रॉबर्ट अर्नेस्ट, 1921, दि थर्टीन प्रिन्सिपल उपनिषद्स, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
6. श्वेताश्वतरोपनिषद्, ह्यूम, रॉबर्ट अर्नेस्ट, 1921, दि थर्टीन प्रिन्सिपल उपनिषद्स, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
7. प्रारम्भिक उपनिषदों का मानक संस्करण, ओलिवेल, पैट्रिक, 1998, दि अर्ली उपनिषद्स : ऐनोटेटेड टेक्स्ट ऐंड ट्रान्सलेशन, न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

द्वितीयक स्रोत

8. राधाकृष्णन, सर्वेपल्ली, 1953, दि प्रिन्सिपल उपनिषद्स, लन्दन : जॉर्ज एलन ऐंड अनविन
9. राधाकृष्णन, सर्वेपल्ली, 1923, इंडियन फिलॉसफी, खंड– 1, लन्दन : जॉर्ज एलन ऐंड अनविन
10. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ, 1922, हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी, खंड 1, लन्दन : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
11. रानाडे, आर. डी., 1926, कन्स्ट्रक्टिव सर्वे ऑफ उपनिषदिक फिलॉसफी, पूना : ओरिएण्टल बुक एजेंसी

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

12. हिरियन्ना, एम., 1932, आउटलाइन्स ऑफ इंडियन फिलॉसफी, लन्दन : जॉर्ज एलन ऐंड अनविन।
13. चटर्जी, सतीशचन्द्र, और दत्त, धिरेन्द्रमोहन, 1939, ऐन इण्ट्रोडक्शन टू इंडियन फिलॉसफी, कलकत्ता : यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता
14. शर्मा, चन्द्रधर, 1960, अ क्रिटिकल सर्वे ऑफ इंडियन फिलॉसफी, लन्दन : राइडर ऐंड कम्पनी
15. राधाकृष्णन, सर्वेपल्ली, और मूर, चार्ल्स ए., 1957, अ सोर्स बुक इन इंडियन फिलॉसफी, प्रिन्सटन : प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस

तृतीयक स्रोत

16. दलाल, रोशन, 2010, हिन्दुइज़्म : ऐन अल्फाबेटिकल गाइड, नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स इंडिया
17. इण्टरनेट एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी, तिथि अनुपलब्ध, उपनिषद्स, ऑनलाइन दार्शनिक प्रविष्टि